ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, January-June 2025, Submitted in March 2025

स्त्री आत्मकथाएँ और समाज-चित्रण : 2000 के बाद की हिंदी रचनाएँ

मंजू, शोधकर्ता, हिंदी विभाग, एनआईआईएलएम विश्वविद्यालय, कैथल (हरियाणा)
डॉ नवनीता भाटिया, सह - प्राध्यापक, हिंदी विभाग, एनआईआईएलएम विश्वविद्यालय, कैथल (हरियाणा)

सार

इक्कीसवीं सदी के बाद लिखी गई हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ केवल व्यक्तिगत जीवन-कथाएँ नहीं हैं, बल्कि वे समकालीन भारतीय समाज का सशक्त सामाजिक दस्तावेज़ भी हैं। इन आत्मकथाओं में स्त्री जीवन के अनुभवों के माध्यम से परिवार, समाज, जाति, वर्ग, श्रम, शिक्षा और सत्ता-संरचनाओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि 2000 के बाद की हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ किस प्रकार समाज-चित्रण का माध्यम बनती हैं और कैसे वे पितृसत्तात्मक, जातिगत एवं वर्गीय असमानताओं को उजागर करती हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री आत्मकथाएँ निजी अनुभवों को सामाजिक विमर्श में रूपांतरित कर, साहित्य को सामाजिक चेतना का प्रभावी उपकरण बनाती हैं।

मुख्य शब्द : स्त्री आत्मकथा, समाज-चित्रण, समकालीन हिंदी साहित्य, स्त्री चेतना, सामाजिक यथार्थ

1. प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में आत्मकथा विधा का विकास आरंभ से ही मुख्यतः पुरुष अनुभवों और उपलब्धियों के इर्द-गिर्द केंद्रित रहा है। लंबे समय तक आत्मकथा को एक ऐसी विधा माना गया जिसमें सार्वजनिक जीवन, बौद्धिक संघर्ष और सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़े अनुभव ही "लेखन योग्य" समझे जाते थे। चूँकि स्त्री का जीवन परंपरागत रूप से घरेलू, निजी और भावनात्मक दायरे तक सीमित मान लिया गया था, इसलिए स्त्री आत्मकथाओं को या तो हाशिए पर रखा गया या उन्हें "भावुक", "निजी" और "असाहित्यिक" कहकर गंभीर आलोचना के दायरे से बाहर कर दिया गया। यही कारण है कि बीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक हिंदी साहित्य में स्त्री आत्मकथाएँ संख्या और प्रभाव—दोनों दृष्टियों से सीमित रहीं।

स्त्री आत्मकथा के इस ऐतिहासिक बहिष्कार के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि स्त्री के जीवन-अनुभवों को साहित्यिक महत्व न दिए जाने के पीछे एक गहरी पितृसत्तात्मक मानसिकता कार्यरत रही है। जैसा कि नारीवादी आलोचना में बार-बार रेखांकित किया गया है—"जो अनुभव निजी कहकर अस्वीकार किए जाते हैं, वही वास्तव में सत्ता-संरचनाओं के सबसे गहरे सत्य होते हैं।" स्त्री का घरेलू जीवन, उसका श्रम, उसका मौन और उसकी पीड़ा दरअसल समाज की संरचना को समझने की सबसे प्रामाणिक कुंजी हैं, किंतु इन्हें लंबे समय तक साहित्य के केंद्र से बाहर रखा गया। 2000 के बाद लिखी गई हिंदी स्त्री आत्मकथाओं ने इस दृष्टि को निर्णायक रूप से चुनौती दी। इस काल की आत्मकथाकारों ने अपने जीवनानुभवों को केवल व्यक्तिगत स्मृति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ी हुई सच्चाइयों के रूप में प्रस्तुत किया। प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा अन्या से अनन्या में स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हैं कि स्त्री का संघर्ष केवल उसके मन के भीतर नहीं होता, बल्कि वह समाज की उन अदृश्य दीवारों से टकराता है जो उसे हर स्तर पर सीमित करने का प्रयास करती हैं। वे लिखती हैं—

"मेरी लड़ाई किसी एक व्यक्ति से नहीं थी, बल्कि उस सोच से थी जो स्त्री को उसकी पूरी मनुष्यता के साथ स्वीकार ही नहीं करना चाहती।"

यह पंक्ति स्पष्ट करती है कि स्त्री आत्मकथा निजी पीड़ा से आगे बढ़कर सामाजिक चेतना का दस्तावेज़ बन जाती है। इसी प्रकार दलित स्त्री आत्मकथाओं में निजी जीवन और सामाजिक यथार्थ का संबंध और भी अधिक स्पष्ट रूप में सामने आता है। उर्मिला पवार आयदान में लिखती हैं कि उन्होंने अपनी आत्मकथा इसलिए नहीं लिखी कि वे अपनी कहानी सुना सकें, बल्कि इसलिए कि "हमारी जैसी अनगिनत स्त्रियों की चुप्पी टूट सके।" यह कथन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि स्त्री आत्मकथा व्यक्तिगत 'मैं' से आगे बढ़कर सामूहिक 'हम' की आवाज़ बन जाती है। यहाँ स्त्री का निजी अनुभव जाति, वर्ग और लिंग—तीनों स्तरों पर सामाजिक शोषण का साक्ष्य बन जाता है। 2000 के बाद का सामाजिक परिदृश्य—जिसमें भूमंडलीकरण, शहरीकरण, शिक्षा का विस्तार और मीडिया की सक्रियता शामिल है—ने स्त्री आत्मकथाकारों को अपनी बात खुलकर कहने का अवसर

दिया। इस दौर में स्त्री लेखन ने यह स्थापित किया कि आत्मकथा केवल आत्म-प्रशंसा या आत्म-दया का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक आत्मालोचना का सशक्त उपकरण है। बेबी हालदार की आत्मकथा में घरेलू कामगार स्त्री का जीवन जिस बेबाकी से सामने आता है, वह इस बात का प्रमाण है कि अब साहित्य उन आवाज़ों को भी दर्ज करने लगा है, जिन्हें पहले "लेखन योग्य" नहीं माना जाता था।

इस प्रकार 2000 के बाद की हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री का निजी जीवन वस्तुतः समाज का ही एक प्रतिबिंब है। यहाँ आत्मकथा केवल आत्म-कथन नहीं रह जाती, बल्कि समाज के भीतर स्त्री की स्थिति, उसके संघर्ष और उसके प्रतिरोध की कहानी बन जाती है। यह लेखन स्त्री को 'विषय' के बजाय 'दृष्टा' के रूप में स्थापित करता है—एक ऐसी चेतन सत्ता के रूप में, जो समाज को देखती है, समझती है और निर्भीक होकर उस पर प्रश्न खड़े करती है। इसी कारण आधुनिक हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ न केवल साहित्यिक विधा का विस्तार हैं, बल्कि सामाजिक विमर्श की दिशा तय करने वाली सशक्त रचनाएँ भी हैं।

शीला झुनझुनवाला — कुछ कही कुछ अनकही **(2000)** शीला झुनझुनवाला की आत्मकथा कुछ कही कुछ अनकही स्त्री-जीवन के उन निजी अनुभवों को सार्वजनिक भाषा में रूपांतरित करती है, जिन्हें परंपरागत रूप से 'घर' की चारदीवारी के भीतर सीमित मान लिया जाता रहा है। यह रचना दिखाती है कि घर और समाज के बीच खिंची अदृश्य रेखाएँ स्त्री की स्वतंत्रता, निर्णय-क्षमता और पहचान को किस प्रकार नियंत्रित करती हैं। पोस्ट-2000 हिंदी स्त्री आत्मकथाओं के संदर्भ में इसका महत्व इस बात में निहित है कि यह "स्त्री की स्मृति" को एक वैध सामाजिक दस्तावेज़ के रूप में प्रतिष्ठित करती है। आत्मकथा यहाँ केवल जीवन-वृत्त नहीं रह जाती, बल्कि समय और समाज की नैतिक-सांस्कृतिक संरचनाओं का आलोचनात्मक मानचित्र बन जाती है। समाज-चित्रण के स्तर पर रचना यह स्पष्ट करती है कि स्त्री का सबसे बड़ा संघर्ष 'दिखाई देने' का है—उसकी इच्छाएँ, श्रम और पहचान अक्सर रिश्तों, भूमिकाओं और सामाजिक अपेक्षाओं के नीचे दबा दिए जाते हैं। नारीवादी दृष्टिकोण सिद्धांत के आलोक में यह कृति स्त्री के अनुभव को ज्ञान का प्रामाणिक स्रोत मानते हुए सत्ता और पितृसत्तात्मक संरचनाओं की आलोचना करती है।

मैत्रेयी पुष्पा — कस्तूरी कुंडल बसै **(2002)** मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा कस्तूरी कुंडल बसै स्त्री के 'स्व' को परिवार और समाज द्वारा गढ़े गए "आदर्श स्त्री" के साँचे से टकराते हुए प्रस्तुत करती है। यह रचना 21वीं सदी की हिंदी स्त्री-आत्मकथा परंपरा में एक केंद्रीय पाठ के रूप में पढ़ी जाती है, क्योंकि इसमें स्त्री-अधिकार, अस्मिता, आत्मसम्मान और प्रतिरोध की चेतना अत्यंत सशक्त रूप में उभरती है। आत्मकथात्मक अनुभवों के माध्यम से लेखिका यह दिखाती हैं कि स्त्री के जीवन से जुड़े निर्णय, उसकी देह, शिक्षा और आकांक्षाएँ किस प्रकार संरचनात्मक पितृसत्ता के तहत सामाजिक नियंत्रण के उपकरण बना दी जाती हैं। समाज-चित्रण यहाँ निजी अनुभवों से आगे बढ़कर व्यापक सामाजिक व्यवस्था की आलोचना करता है, जहाँ स्त्री की पहचान को सीमित और अनुशासित करने की निरंतर कोशिश दिखाई देती है। जेंडर एक सामाजिक निर्माण के रूप में तथा एजेंसी/प्रतिरोध के सैद्धांतिक ढाँचे में यह कृति इस निष्कर्ष तक पहुँचती है कि आत्मकथा-लेखन स्वयं में प्रतिरोध का कार्य है—जिसके माध्यम से स्त्री अपने अनुभवों को भाषा देकर अपनी एजेंसी और वैचारिक स्वायत्तता का निर्माण करती है।

सुनीता जैन — शब्दकाया **(2005)** शब्दकाया आधुनिक हिंदी स्त्री आत्मकथा में भाषा, चेतना, उम्र और पहचान के जटिल संबंधों को केंद्र में रखती है। यह रचना आत्मानुभव को किसी स्थिर जीवन-क्रम के रूप में नहीं, बल्कि सतत आत्म-विश्लेषण की प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है, जहाँ लेखिका "चेतना" को जैविक उम्र से अलग मानते हुए अनुभव की दार्शनिक व्याख्या करती हैं। समाज-चित्रण यहाँ प्रत्यक्ष संघर्ष या नारेबाज़ी के रूप में नहीं आता, बल्कि बौद्धिक और सांस्कृतिक संसार में स्त्री की स्थिति को लेकर मौजूद सूक्ष्म दबावों—जैसे उसकी विश्वसनीयता, वैचारिक अधिकार और आवाज़ की स्वीकृति—को खोलता है। आत्मकथा आत्म-निर्माण के रूप में और नारीवादी कथाशास्त्र के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में यह कृति दिखाती है कि स्त्री भाषा के माध्यम से अपने "स्व" का निर्माण करती है और इसी प्रक्रिया में सामाजिक सत्ता से संवाद और टकराव दोनों करती है।

मन्नू भंडारी — एक कहानी यह भी **(2007)** एक कहानी यह भी स्त्री के जीवन में शिक्षा, परिवार, संस्थान और सार्वजनिक

क्षेत्र के बीच बने तनावपूर्ण संबंधों को आत्मकथात्मक ढंग से उजागर करती है। रचना में कॉलेज, अनुशासन और प्रतिष्ठा जैसी संस्थागत धारणाओं का दबाव स्पष्ट दिखाई देता है, जिससे यह समझ बनती है कि स्त्री की सक्रियता और स्वतंत्र सोच को अक्सर "अनुशासनहीनता" के रूप में पढ़ा जाता है। समाज-चित्रण के स्तर पर यह कृति दिखाती है कि वैयक्तिक स्वतंत्रता को 'सम्मान', 'इज़्ज़त' और 'मर्यादा' जैसी अवधारणाओं के माध्यम से नियंत्रित किया जाता है। संस्थागत आलोचना और पितृसत्तात्मक सम्मानजनक राजनीति के आलोक में यह आत्मकथा उन तर्क-प्रणालियों को बेनकाब करती है, जिनके ज़रिये पितृसत्ता स्त्री की आवाज़ और गति पर नियंत्रण बनाए रखती है।

मृदुला गर्ग — राजपथ से लोकपथ पर **(2008)** राजपथ से लोकपथ पर शीर्षक के स्तर पर ही सत्ता और प्रतिष्ठा के मार्ग (राजपथ) से जन-समाज के अनुभवों (लोकपथ) की ओर दृष्टि-परिवर्तन का संकेत देती है। यह आत्मकथा निजी जीवन को सार्वजनिक संरचनाओं के साथ जोड़कर पढ़ती है और दिखाती है कि स्त्री का अनुभव सत्ता के आधिकारिक इतिहास के समानांतर समाज का एक "भीतरी" इतिहास रचता है। समाज-चित्रण में रिश्तों, नैतिक अपेक्षाओं, वर्ग-प्रतिष्ठा और सार्वजनिक छवि के दबाव उभरते हैं, जिनके भीतर स्त्री अपनी पहचान गढ़ती है। सार्वजनिक/निजी क्षेत्र की आलोचना के फेमिनिस्ट राजनीतिक दृष्टिकोण से यह कृति यह प्रतिपादित करती है कि निजी जीवन भी राजनीतिक है और स्त्री आत्मकथा उसी राजनीति को उजागर करने का सशक्त माध्यम बनती है।

ममता कालिया — कितने शहरों में कितनी बार **(2011)** कितने शहरों में कितनी बार स्त्री जीवन की यात्रा को "शहरों" की स्मृतियों के माध्यम से दर्ज करती है, जहाँ स्थान परिवर्तन के साथ पहचान, संबंध और संवेदना भी बदलती जाती है। यह रचना केवल स्मृति-लेखन नहीं, बल्कि शहरी जीवन में छिपे स्त्री-अनुभवों की खोज और उत्सव है। समाज-चित्रण के स्तर पर यह आत्मकथा शहरीकरण, नौकरी, स्थानांतरण, रिश्तों की अस्थिरता और अकेलेपन जैसी आधुनिक स्थितियों को निजी सीमाओं से बाहर लाकर सामाजिक अनुभव के रूप में प्रस्तुत करती है। स्थानिक सिद्धांत और लिंग-आधारित स्थान के संदर्भ में यह कृति दिखाती है कि शहर, घर और कार्यस्थल जैसे स्थान स्त्री-अस्मिता के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

चन्द्रकान्ता — हाशिए की इबारतें **(2012)** हाशिए की इबारतें आत्मकथात्मक संस्मरण के रूप में स्त्रियों की सोच, आकांक्षाओं, स्वप्नों और संघर्षों से गहरा साक्षात्कार कराती है। यह रचना दिखाती है कि "हाशिया" केवल सामाजिक स्थान नहीं, बल्कि एक जीवित अनुभव है—जहाँ स्त्री भीतर और बाहर, दोनों स्तरों पर संघर्ष करती है। समाज-चित्रण में यह स्पष्ट होता है कि स्त्री-अनुभव अक्सर मुख्यधारा से बाहर धकेल दिए जाते हैं, और आत्मकथा/संस्मरण उन्हें भाषा देकर केंद्र में ले आता है। सबअल्टर्न/नारीवादी हाशिए पर के सैद्धांतिक ढाँचे में यह कृति हाशिए की आवाज़ को टेक्स्ट का केंद्र बनाते हुए पितृसत्तात्मक और सामाजिक बहिष्करण की प्रक्रियाओं पर तीखी रोशनी डालती है।

2. स्त्री आत्मकथा: अवधारणा और सामाजिक संदर्भ

स्त्री आत्मकथा की मूल विशेषता यह है कि वह आत्म-अनुभव को सामाजिक अनुभव में रूपांतरित कर देती है। स्त्री के जीवन में घटित घटनाएँ—जैसे विवाह, मातृत्व, शिक्षा, श्रम, यौन-उत्पीड़न, जातिगत भेदभाव और पारिवारिक नियंत्रण—प्रथम दृष्टि में निजी प्रतीत होती हैं, किंतु जब इन्हें आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो ये घटनाएँ सामाजिक संरचनाओं और सत्ता-संबंधों की गहन आलोचना बन जाती हैं। स्त्री आत्मकथा यह स्पष्ट करती है कि स्त्री का जीवन केवल व्यक्तिगत निर्णयों का परिणाम नहीं है, बल्कि वह समाज द्वारा निर्मित नियमों, परंपराओं और अपेक्षाओं से निरंतर संचालित होता है। इसी कारण स्त्री आत्मकथा को केवल आत्मकथन नहीं, बल्कि सामाजिक दस्तावेज़ के रूप में देखा जाना चाहिए।

2000 के बाद की हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ इस दृष्टि से विशेष महत्व रखती हैं कि वे एक ऐसे सामाजिक दौर में लिखी गई हैं, जहाँ भारतीय समाज भूमंडलीकरण, शहरीकरण और उपभोक्तावाद से गहराई से प्रभावित हुआ। इस कालखंड में स्त्रियों के लिए शिक्षा, रोजगार और सार्वजनिक क्षेत्र में भागीदारी के नए अवसर तो खुले, पर साथ ही शोषण के नए, अधिक सूक्ष्म और जटिल रूप भी सामने आए। कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव, यौन उत्पीड़न, असुरक्षा, घरेलू और पेशेवर जीवन के बीच संतुलन का दबाव—ये सभी अनुभव स्त्री आत्मकथाओं में प्रत्यक्ष रूप से दर्ज होते हैं।

प्रभा खेतान की आत्मकथा अन्या से अनन्या में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आधुनिक और शिक्षित स्त्री भी सामाजिक नैतिकता और पितृसत्तात्मक अपेक्षाओं से मुक्त नहीं हो पाती। वे लिखती हैं कि स्त्री की स्वतंत्रता को समाज सहजता से स्वीकार नहीं करता और उसकी सफलता भी संदेह की दृष्टि से देखी जाती है। उनका आत्मकथात्मक लेखन यह दिखाता है कि उपभोक्तावादी और शहरी समाज में स्त्री की पहचान लगातार सामाजिक निगरानी के अधीन रहती है। इसी प्रकार उर्मिला पवार की आत्मकथा आयदान स्त्री आत्मकथा को सामाजिक यथार्थ की और अधिक गहरी परतों तक ले जाती है। दलित स्त्री के अनुभवों को केंद्र में रखते हुए वे यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री के शोषण में केवल लिंग ही नहीं, बल्कि जाति भी निर्णायक भूमिका निभाती है। उनका लेखन यह सिद्ध करता है कि सामाजिक परिवर्तन और संवैधानिक समानता के दावों के बावजूद जातिगत भेदभाव आज भी स्त्री जीवन को गहराई से प्रभावित करता है। इस प्रकार आत्मकथा व्यक्तिगत पीड़ा से आगे बढ़कर सामाजिक अन्याय की सामूहिक कथा बन जाती है।

बेबी हालदार की आत्मकथा आलो आंधारि श्रमजीवी स्त्री के अनुभवों के माध्यम से समकालीन समाज की वर्गीय संरचना को उजागर करती है। घरेलू कामगार स्त्री का श्रम आधुनिक शहरी जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है, फिर भी उसे सामाजिक सम्मान और सुरक्षा नहीं मिलती। उनकी आत्मकथा यह दर्शाती है कि उपभोक्तावादी समाज में भी श्रम की गरिमा वर्ग और लिंग के आधार पर तय होती है। यह लेखन यह भी स्पष्ट करता है कि आर्थिक अवसर मिलने के बावजूद सामाजिक असमानताएँ बनी रहती हैं।

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा दलित स्त्री के दोहरे संघर्ष—जाति और पितृसत्ता—को सामाजिक संदर्भ में प्रस्तुत करती है। वे यह दिखाती हैं कि शिक्षा और नौकरी प्राप्त करने के बाद भी दलित स्त्री को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती। उनका आत्मकथात्मक लेखन यह प्रश्न उठाता है कि क्या आधुनिकता और विकास वास्तव में समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों तक पहुँचे हैं।

इन सभी लेखिकाओं के अनुभव यह सिद्ध करते हैं कि 2000 के बाद की स्त्री आत्मकथाएँ सामाजिक परिवर्तन को केवल प्रगति के रूप में नहीं देखतीं, बल्कि उसकी सीमाओं और विरोधाभासों को भी उजागर करती हैं। ये आत्मकथाएँ यह दिखाती हैं कि सामाजिक परिवर्तन समानता की गारंटी नहीं देता; बल्कि कई बार वह शोषण के नए रूपों को जन्म देता है। स्त्री आत्मकथा इसीलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह समाज को भीतर से देखती है और व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से सामाजिक सच्चाइयों को सामने लाती है। इस प्रकार स्त्री आत्मकथा की अवधारणा और उसका सामाजिक संदर्भ यह स्पष्ट करता है कि आत्म-अनुभव और सामाजिक यथार्थ के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है। स्त्री का निजी जीवन ही समाज की वास्तविक संरचना को उजागर करता है और आत्मकथा उस संरचना को शब्दों में ढालने का सशक्त माध्यम बन जाती है। यही कारण है कि 2000–2020 के बीच लिखी गई हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ न केवल साहित्यिक दृष्टि से, बल्कि सामाजिक विमर्श के स्तर पर भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

3. स्त्री आत्मकथाओं में समाज-चित्रण के प्रमुख आयाम

आधुनिक हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ (2000–2020) समाज-चित्रण को किसी बाहरी पर्यवेक्षण के माध्यम से नहीं, बल्कि भोगे हुए अनुभवों के आधार पर प्रस्तुत करती हैं। यही कारण है कि इन आत्मकथाओं में उभरने वाला समाज न तो सैद्धांतिक है और न ही आदर्शीकृत, बल्कि वह जीवंत, विरोधाभासी और कई स्तरों पर स्त्री-विरोधी संरचनाओं से युक्त दिखाई देता है। परिवार, शिक्षा, जाति, वर्ग और श्रम—ये सभी स्त्री जीवन के ऐसे केंद्रीय क्षेत्र हैं, जहाँ समाज अपनी वास्तविक शक्ल में सामने आता है।

3.1 परिवार और पितृसत्ता

स्त्री आत्मकथाओं में परिवार को प्रायः एक सुरक्षित और संरक्षण देने वाली संस्था के रूप में नहीं, बल्कि पितृसत्ता के प्राथमिक और सबसे प्रभावशाली केंद्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परिवार वह पहली सामाजिक इकाई है, जहाँ स्त्री को अपने लिंग के कारण अनुशासन, आज्ञाकारिता और त्याग का पाठ पढ़ाया जाता है। पिता, भाई, पति और कभी-कभी माँ भी पितृसत्तात्मक मूल्यों की वाहक बनकर स्त्री के जीवन को नियंत्रित करते दिखाई देते हैं। आत्मकथाओं में यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की इच्छा, आकांक्षा और निर्णय परिवार के "सम्मान" और "मर्यादा" के नाम पर बार-बार दबा दिए जाते हैं। विवाह संस्था का आदर्शीकृत रूप, जिसे समाज स्त्री की पूर्णता के रूप में प्रस्तुत करता है, आत्मकथाओं में टूटता हुआ दिखाई देता है। स्त्री आत्मकथाकार

विवाह को प्रेम और सुरक्षा का प्रतीक मानने के बजाय शक्ति-संतुलन की असमान व्यवस्था के रूप में देखती हैं, जहाँ स्त्री से समर्पण की अपेक्षा की जाती है, पर उसे समान अधिकार नहीं मिलते। घरेलू श्रम का बोझ, भावनात्मक श्रम की अनदेखी और निर्णयों से बाहर रखा जाना—ये सभी पहलू परिवार के भीतर स्त्री की अधीनस्थ स्थिति को उजागर करते हैं। इस प्रकार परिवार आत्मकथाओं में सामाजिक अन्याय का सूक्ष्म, किंतु स्थायी रूप बनकर सामने आता है।

3.2 शिक्षा और सामाजिक चेतना

शिक्षा आधुनिक स्त्री आत्मकथाओं में एक महत्वपूर्ण आयाम के रूप में उभरती है। यह स्त्री के लिए चेतना, आत्मबोध और प्रतिरोध का साधन बनती है। शिक्षा के माध्यम से स्त्री समाज की असमानताओं को समझने लगती है और अपने जीवन की परिस्थितियों पर प्रश्न उठाने का साहस प्राप्त करती है। कई आत्मकथाओं में शिक्षा को "आँख खोलने वाली शक्ति" के रूप में चित्रित किया गया है, जिसने स्त्री को आत्मनिर्भर बनने और अपनी पहचान गढ़ने में सहायता दी। किन्तु आत्मकथाएँ यह भी स्पष्ट करती हैं कि शिक्षा स्त्री को सामाजिक संघर्षों से मुक्त नहीं करती। विद्यालय, कॉलेज और विश्वविद्यालय जैसे स्थान—जिन्हें प्रगतिशील और समानता-आधारित माना जाता है—वहाँ भी लैंगिक भेदभाव, मानसिक उत्पीड़न और नैतिक निगरानी मौजूद रहती है। शिक्षित स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह "सीमाओं में रहकर" आगे बढ़े। यदि वह स्वतंत्र विचार या व्यवहार अपनाती है, तो उसे चरित्र और मर्यादा के प्रश्नों से घेर लिया जाता है। इस प्रकार शिक्षा स्त्री को चेतना तो देती है, पर उसी चेतना के कारण उसके संघर्ष और भी तीव्र हो जाते हैं। आत्मकथाओं में यह विरोधाभास शिक्षा और समाज के बीच की दूरी को उजागर करता है।

3.3 जाति, वर्ग और श्रम

दलित और श्रमजीवी स्त्रियों की आत्मकथाएँ समाज-चित्रण को और अधिक तीक्ष्ण तथा यथार्थपरक बना देती हैं। इन आत्मकथाओं में जाति और वर्ग केवल सामाजिक श्रेणियाँ नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के जीवन में अनुभव किए जाने वाले उत्पीड़न के रूप में सामने आते हैं। दलित स्त्री को न केवल पितृसत्ता से, बल्कि जातिगत अपमान और बहिष्कार से भी जूझना पड़ता है। शिक्षा, नौकरी और सामाजिक प्रगति के बावजूद जाति उसकी पहचान से चिपकी रहती है और उसे बार-बार "नीचा" सिद्ध किया जाता है। श्रमजीवी स्त्रियों की आत्मकथाएँ वर्गीय असमानता को उजागर करती हैं। घरेलू कामगार, मजदूर और निम्न-वर्गीय स्त्रियों का श्रम समाज के लिए अनिवार्य है, फिर भी उसे सम्मान और सुरक्षा नहीं मिलती। उनका श्रम अदृश्य बना रहता है और उन्हें केवल "सेवा" करने वाली इकाई के रूप में देखा जाता है। आत्मकथाएँ यह दिखाती हैं कि उपभोक्तावादी और शहरी समाज में भी श्रम की गरिमा वर्ग और लिंग के आधार पर तय होती है।

इस प्रकार जाति, वर्ग और श्रम से जुड़े अनुभव स्त्री आत्मकथाओं में समाज के उस पक्ष को उजागर करते हैं, जिसे मुख्यधारा का साहित्य लंबे समय तक अनदेखा करता रहा। ये आत्मकथाएँ सामाजिक यथार्थ को केवल दिखाती नहीं, बल्कि उसकी आलोचना भी करती हैं और यह प्रश्न उठाती हैं कि क्या आधुनिक समाज वास्तव में समानता और न्याय के मूल्यों पर खड़ा है।

4. चयनित स्त्री आत्मकथाओं में समाज-चित्रण

4.1 सुशीला टाकभौरे

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा शिकंजे का दर्द दलित स्त्री के जीवन को सामाजिक संरचनाओं के भीतर रखकर देखती है। उनका समाज-चित्रण यह स्पष्ट करता है कि जाति और लिंग मिलकर स्त्री के लिए शोषण का दोहरा तंत्र निर्मित करते हैं। शिक्षा और नौकरी प्राप्त करने के बाद भी दलित स्त्री सामाजिक सम्मान से वंचित रहती है। टाकभौरे लिखती हैं कि आधुनिक संस्थाएँ—विद्यालय, कार्यालय, प्रशासन—भी जातिगत मानसिकता से मुक्त नहीं हैं।

"मेरी योग्यता से पहले मेरी जाति देखी जाती थी।" (शिकंजे का दर्द, पृ. 46)

यह कथन समाज की उस वास्तविकता को उजागर करता है जहाँ संवैधानिक समानता और सामाजिक व्यवहार के बीच गहरा अंतर है। उनका लेखन समाज को केवल वर्णन नहीं करता, बल्कि नैतिक रूप से प्रश्नांकित करता है।

4.2 उर्मिला पवार

उर्मिला पवार की आत्मकथा में स्त्री अस्मिता और दलित चेतना का गहरा अंतर्संबंध दिखाई देता है। वे न केवल बाहरी सामाजिक

ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, January-June 2025, Submitted in March 2025

उत्पीड़न को उजागर करती हैं, बल्कि दलित आंदोलन के भीतर स्त्री की उपेक्षा पर भी प्रश्न उठाती हैं। उनका समाज-चित्रण आत्मालोचनात्मक है। उर्मिला पवार की आत्मकथा आयदान में समाज-चित्रण अधिक जटिल और आत्मालोचनात्मक है। वे न केवल बाहरी सामाजिक उत्पीड़न को उजागर करती हैं, बल्कि दलित आंदोलन के भीतर मौजूद लैंगिक असमानताओं पर भी प्रश्न उठाती हैं।

पवार यह स्वीकार करती हैं कि संघर्ष के मंच पर स्त्री की भागीदारी बराबरी की नहीं रही—

"संघर्ष में हम साथ थे, निर्णयों में नहीं।" (आयदान, पृ. 111)

यह पंक्ति दलित चेतना के भीतर मौजूद पितृसत्ता को स्पष्ट करती है। उर्मिला पवार का समाज-चित्रण इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह सामाजिक आंदोलनों की सीमाओं को भी उजागर करता है।

4.3 बेबी हालदार

बेबी हालदार की आत्मकथा आलो आंधारि श्रमजीवी स्त्री के जीवनानुभवों के माध्यम से समाज की वर्गीय संरचना को अत्यंत सजीव और मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है। उनका लेखन यह स्पष्ट करता है कि घरेलू कामगार स्त्री का श्रम समाज के लिए अनिवार्य होते हुए भी सामाजिक मान्यता और सम्मान से वंचित रहता है। घरों की सफ़ाई, खाना पकाना, बच्चों की देखभाल जैसे कार्य स्त्री के जीवन का दैनिक यथार्थ हैं, किंतु इन्हें "काम" की श्रेणी में रखकर सामाजिक दृष्टि से कभी गंभीरता से नहीं लिया जाता।

बेबी हालदार के समाज-चित्रण में यह विडंबना उभरकर सामने आती है कि जिस स्त्री के श्रम से मध्यवर्गीय जीवन सहज और सुव्यवस्थित बनता है, वही स्त्री स्वयं असुरक्षा, गरीबी और अपमान में जीवन जीने को विवश रहती है। वे अनुभव के स्तर पर यह संकेत देती हैं कि घरेलू कामगार स्त्री "घर के भीतर" रहते हुए भी सामाजिक रूप से "घर से बाहर" ही रहती है—न वह परिवार का हिस्सा होती है और न ही नागरिक अधिकारों की पूर्ण अधिकारी।

बेबी हालदार की आत्मकथा आलो आंधारि श्रमजीवी स्त्री के जीवन को केंद्र में रखती है। उनका समाज-चित्रण यह दिखाता है कि घरेलू श्रम समाज के लिए आवश्यक होते हुए भी सम्मानहीन है।

वे लिखती हैं—

"मैं घर में थी, लेकिन घर का हिस्सा नहीं थी।"

(आलो आंधारि, पृ. 33)

यह पंक्ति श्रम और मानव गरिमा के बीच मौजूद दूरी को उजागर करती है। समाज यहाँ वर्गीय असमानता के रूप में सामने आता है, जहाँ श्रमिक स्त्री केवल 'सेवा देने वाली देह' बनकर रह जाती है।

उनकी आत्मकथा में वर्गीय असमानता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि मानसिक और नैतिक दूरी के रूप में भी प्रकट होती है। काम देने वाले और काम करने वाली स्त्री के बीच संबंध मानवीय नहीं, बल्कि सत्ता-आधारित होता है, जहाँ आदेश, निगरानी और अविश्वास लगातार उपस्थित रहते हैं। इस प्रकार बेबी हालदार का लेखन समाज को वर्गीय अन्याय के आईने में रखकर दिखाता है और यह प्रश्न उठाता है कि श्रम की गरिमा के बिना सामाजिक समानता का कोई भी दावा खोखला है।

4.4 प्रभा खेतान

प्रभा खेतान की आत्मकथा शहरी, शिक्षित स्त्री के भीतर के द्वंद्व को सामने लाती है। उनका समाज-चित्रण यह दर्शाता है कि आर्थिक स्वतंत्रता भी स्त्री को पितृसत्तात्मक नियंत्रण से पूर्णतः मुक्त नहीं कर पाती।

प्रभा खेतान की आत्मकथा अन्या से अनन्या शहरी, शिक्षित और आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री के भीतर के संघर्षों को सामने लाती है। उनका समाज-चित्रण यह स्पष्ट करता है कि आर्थिक आत्मनिर्भरता भी स्त्री को सामाजिक संदेह से मुक्त नहीं कर पाती।

वे लिखती हैं— "मेरी सफलता मेरे पक्ष में नहीं, मेरे ख़िलाफ़ इस्तेमाल हुई।" (अन्या से अनन्या, पृ. 102)

यह कथन शहरी समाज की उस मानसिकता को उजागर करता है, जहाँ स्वतंत्र स्त्री को स्वीकार करना अभी भी कठिन है।

5. भाषा, दृष्टि और सामाजिक सरोकार

2000 के बाद लिखी गई स्त्री आत्मकथाओं की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी भाषा, दृष्टि और सामाजिक सरोकारों की

या शिल्पगत प्रदर्शन की बजाय जीवन की सच्चाइयों को सीधे और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती है। यह भाषा बोलचाल के निकट होते हुए भी संवेदनात्मक गहराई से युक्त है, क्योंकि यह उन अनुभवों से उपजी है जिन्हें लेखिकाओं ने स्वयं जिया और सहा है। परिणामस्वरूप, पाठक को यह भाषा किसी रचना से अधिक एक जीवंत साक्ष्य की तरह प्रतीत होती है, जहाँ शब्दों के पीछे सामाजिक पीड़ा, आक्रोश और आत्मसम्मान की आकांक्षा स्पष्ट रूप से महसूस की जा सकती है।

इन आत्मकथाओं की दृष्टि आत्मकेंद्रित न होकर समाज-केंद्रित है। 'मैं' का प्रयोग यहाँ आत्ममुग्धता के लिए नहीं, बल्कि सामूहिक अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिए किया गया है। व्यक्तिगत जीवन-कथाएँ धीरे-धीरे व्यापक सामाजिक संरचनाओं—जैसे परिवार, जाति, वर्ग, श्रम और पितृसत्ता—की आलोचना में परिवर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार 'मैं' के माध्यम से 'हम' की आवाज़ सुनाई देती है, जिसमें स्त्री जीवन के अनेक साझा संघर्ष और अनुभव समाहित होते हैं। यह दृष्टि स्त्री आत्मकथाओं को केवल निजी स्वीकारोक्ति नहीं रहने देती, बल्कि उन्हें सामाजिक दस्तावेज़ का स्वरूप प्रदान करती है।

इन आत्मकथाओं के सामाजिक सरोकार उन्हें परिवर्तनकामी साहित्य के रूप में स्थापित करते हैं। ये रचनाएँ समाज की असमानताओं को केवल उजागर ही नहीं करतीं, बल्कि पाठक को असहज प्रश्नों से भी रूबरू कराती हैं—स्त्री श्रम की अवमानना क्यों होती है, जाति और वर्ग आज भी क्यों निर्णायक हैं, और आधुनिकता के बावजूद स्त्री को समानता क्यों नहीं मिल पाती। इस प्रकार भाषा की सादगी, दृष्टि की व्यापकता और सामाजिक सरोकारों की तीव्रता मिलकर 2000 के बाद की स्त्री आत्मकथाओं को आधुनिक हिंदी साहित्य में एक सशक्त, संवेदनशील और सामाजिक परिवर्तन की चेतना से युक्त विधा के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

6. निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि 2000 के बाद की हिंदी स्त्री आत्मकथाएँ समाज-चित्रण की अत्यंत सशक्त विधा के रूप में उभरी हैं। ये आत्मकथाएँ यह सिद्ध करती हैं कि स्त्री का निजी जीवन सामाजिक संरचनाओं से गहराई से जुड़ा हुआ है। स्त्री आत्मकथाकार अपने जीवन अनुभवों के माध्यम से समाज की असमानताओं, विडंबनाओं और विरोधाभासों को उजागर करती हैं तथा साहित्य को सामाजिक चेतना और प्रतिरोध का माध्यम बनाती हैं। इस प्रकार स्त्री आत्मकथाएँ आधुनिक हिंदी साहित्य में समाज-चित्रण की नई और प्रामाणिक परंपरा स्थापित करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बेबी हालदार. (2002). *आलो आंधारि*. रोशनाई प्रकाशन।
2. भंडारी, मन्नू. (2008). *एक कहानी यह भी*. राजकमल प्रकाशन।
3. खेतान, प्रभा. (2007). *अन्या से अनन्या*. राजकमल प्रकाशन।
4. कालिया, ममता. (2011). *कितने शहरों में कितनी बार*. राजकमल प्रकाशन।
5. चन्द्रकान्ता. (2009). *हाशिए की इबारतें*. राजकमल प्रकाशन।
6. जैन, सुनीता. (2005). *शब्दकाया*. राजकमल प्रकाशन।
7. पवार, उर्मिला. (2010). *आयदान* (हिंदी सं.). वाणी प्रकाशन।
8. पुष्पा, मैत्रेयी. (2002). *कस्तूरी कुंडल बसै*. राजकमल प्रकाशन।
9. टाकभौरे, सुशीला. (2020). *शिकंजे का दर्द* (3rd ed.). वाणी प्रकाशन।
10. झुनझुनवाला, शीला. (2000). *कुछ कही, कुछ अनकही*. सारांश।